स्मृतियों का नाचघर

नवनीत नीरव

बचपन में एक क्षण ऐसा होता है जब एक द्वार खुलता है और भविष्य भीतर प्रवेश करता है।

- ग्राहम ग्रीन

हम जिस समाज में रहते हैं वहां बच्चों की पढ़ाई को लेकर चिंताएं जगजाहिर हैं। माता-पिता, अभिभावक से लेकर शिक्षक तक सभी एक ही बात करते दिखते हैं कि उनके बच्चे पढ़ाई को लेकर गंभीर नहीं हैं। गंभीर नहीं होने का अर्थ है उनकी चिंताओं/उम्मीदों के अनुसार बच्चा काम नहीं कर रहा। 'पढ़ने' का यहां अपना अर्थ है। यानि 'बच्चों को पढ़ने के लिए' कहने का मतलब हमेशा कुछ 'सिखलाने से' होता है। सामान्यतः कहानी-कविता या साहित्य का महत्व उस 'सिखलाने वाली शिक्षा' के अर्थों में कभी नहीं रहा। यानि उन सभी कामों से उसे भरसक दूर रखना जो उसे जीवन जीने के लिए सही अर्थों में तैयार करते हों। इसलिए साहित्य कभी भी अर्थपूर्ण काम के रूप में गिना ही नहीं गया। साहित्य एकांगी भी तो नहीं होता। खेलना-कूदना, गप्प हांकना, चित्र बनाना, कहानी सुनना, दोस्तों के संग समय बिताना आदि बातें भी बच्चों की पंसद हैं। लेकिन इनके साथ मुश्किल ये है कि ये अर्थपूर्ण कामों के श्रेणी में गिने ही नहीं जाते। हकीकत तो यह है कि है बढ़ते बच्चों के रोजमर्रा के दुनियावी संघर्ष को न तो हम सही से पहचान पाते हैं न ही इसमें किसी प्रकार की सहायता कर पाने में सक्षम हैं। इसी तरह की आदत को लेकर हम जीते हैं। इसलिए यह कहीं भी सीखने की प्रक्रिया का भाग नहीं जान पड़ता। जीविकोपार्जन और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता की सोच हमारे मानस पटल पर इतनी हावी है कि बच्चों की शिक्षा के दूसरे विकल्प गौण लगते हैं। फिलहाल ये सोच उस पूरे समाज की है जहां हम रहते हैं। तभी तो हमारे नीति-निर्धारक भी हमसे एक कदम आगे सोचने लगे हैं। जहां गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, नयी शिक्षा की तकनीक, कला-साहित्य आदि के माध्यमों को सूदूर गांवों तक सुनिश्चित करने की बात होनी चाहिए थी वहां 'साईकिल पंचर बनाने' जैसे विकल्प बड़ी संवेदनहीन तरीके से लागू कराए जाने की सिफारिश हो रही है।

हम सभी पढ़े-लिखे समाज से आने का दावा करते हैं। देश-दुनिया की तमाम हलचलों पर हमारी नजर रहती है। तकरीबन हर महीने हो रहे चुनाव हों, ट्रंप से लेकर जिनपिंग की जन्मपत्री हो या फिर ट्वेंटी-ट्वेंटी सब तक हमारी पहुंच है। अगर साहित्य में अभिरुचि हो तो क्लासिक कृतियों से लेकर बेस्टसेलर तक की बातें हफ्ते-महीनों में कभी-कभार कर ही लेते हैं. महीने में दो-चार किताबें पढ़ते तो नहीं लेकिन पढ़ने के लिए खरीद जरूर लेते हैं। या बात उससे थोड़ी आगे बढ़े तो सोशल मीडिया पर कुछ पंक्तियों में उसकी सचित्र चर्चा भी कर लेते हैं। इन सबसे कभी फुर्सत मिले तो अपनी यादाश्त पर जोर देते हुए सोचिएगा कि गत दो-तीन वर्षों में बाल साहित्य के नाम पर या फिर बच्चों के लिए कौन सी किताब आपने हिंदी में पढ़ी है? या फिर उसके प्रकाशन की चर्चा सुनी है। थोड़ा जोर लगाकर अखबारों, सोशल मीडिया की खबरों, किसी बुक स्टोर या फिर किसी समीक्षा-चर्चा आदि की स्मृतियों को स्कैन करने पर पाएंगे कि दो-एक किताबें तो आपको याद

आ गईं। (ये भला हो कुछ साल भर की चर्चित पुस्तकों और बाल साहित्य के लिए दिए जाने वाले पुरस्कारों का जिनके बहाने बाल साहित्य के कुछ टाईटल न्यूज के साथ जेहन में दाखिल हो जाते हैं) पूछने पर कि हमने उसे किसी बच्चे को पढ़ने लिए कभी दिया है शायद इसके जवाब की उम्मीद बेमानी ही होगी। संचार के साधनों का विकास और हिंदी में बाल साहित्य लेखन का कम होना एक कारण बताया जाता है।

''बच्चों में बाल साहित्य के प्रति रुझान कम हो ऐसा नहीं होता। हैरी पॉटर का उदाहरण हम सबके सामने है। बालसाहित्य की अच्छी किताबें बच्चों तक नहीं पहुंचती। उनके माता पिता को नहीं मालूम कि कहां मिलती हैं तो ये दिक्कत है। इंटरनेट मोबाइल कम्प्यूटर थोड़ा फर्क डाल रहे हैं। लेकिन एक अच्छी-सी पुस्तक बच्चे के सामने हो तो वह जरूर पढ़ेगा। जरूर देखेगा और अपने लिए एक नई दुनिया का रास्ता खुद ढूंढ़ेगा और तय करेगा। इसलिए बहुत अच्छा साहित्य लिखा जाना चाहिए और बच्चों तक पहुंचना चाहिए''

(एक रेडियो कार्यक्रम में प्रियंवद)

बाल साहित्य की दृष्टि से विगत कुछ वर्षों को महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। महत्वपूर्ण इसलिए क्योंकि हिंदी के वरिष्ठ रचनाकारों ने इस बार बाल साहित्य का रुख किया है। वरिष्ठ रचनाकार विनोद कुमार शुक्ल का बाल उपन्यास एक चुप्पी जगह, कथाकार एवं इतिहासकार प्रियंवद की दो किताबें नाचघर (बाल उपन्यास) और मिट्टी की गाड़ी (कहानी संग्रह) विगत वर्षों में इकतारा, भोपाल से प्रकाशित हुए हैं। इकतारा तक्षशिला एजुकेशनल सोसाईटी का बाल साहित्य एवं कला केंद्र है। ज्ञातव्य है कि 'एक चुप्पी जगह' और 'नाचघर' दोनों उपन्यास किस्तों में भोपाल से ही प्रकाशित होने वाली अन्य बाल पत्रिका 'चकमक' में छप चुके हैं।

'नाचघर' प्रियम्वद का पहला बाल उपन्यास है। यह उपन्यास पंद्रह अध्यायों में बाईस वर्षों के कथानक को समेटे हुए है। इसमें अतनु राय के चौदह खूबसूरत इलस्ट्रेशन भी हैं, जो नब्बे के दशक की कहानी कहते उपन्यास को अनूठे कलेवर में प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास में लेखक के बारे में छपी एक संक्षिप्त टिप्पणी :

''वे इतनी छोटी-छोटी चीजों से, वाकयों से इतना भर-पूरा खूबसूरत उपन्यास बना देते हैं कि बया की याद आ जाती है। यानि जैसे बया को कहानी लिखना आता हो। सुबह पांच बजे सिविल लाइंस के कब्रिस्तान में चहलकदमी करते वक्त उनके मन की कहानी पहली बार वहां सोए लोग सुनते हैं। भाषा का तिलिस्म कोई ऐसे ही तो खड़ा नहीं हो जाता। वे उपरी ब्यौरों के कायल नहीं हैं। वे छांव का पता लगाने धूप का पीछा करते सूरज तक जाते हैं।''

उदारीकरण के बाद हमारे देश की सामाजिक संरचना के ढांचे में परिवर्तन आया है। उसकी प्रतिष्ठा सकल घरेलू उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय से अनुमानित की जाती है। इसने कला-संस्कृति को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाया है। हमारे गांव में लोग धान के बीज को बड़े सुरक्षित तरीके से अगली फसलों के लिए बचाकर रखते थे। यह सिलसिला सदियों से चला आ रहा था। विगत दो दशकों में यह सिलसिला लगभग टूट सा गया है। हमने कुछ अतिरिक्त कामों से खुद को आजादी दे दी। अब कुछ भी बचा ले जाने (संजो लेने/संरक्षित करने) की कोई चेष्टा नहीं है। बाजार ने हर चीज को हमारे घर तक उपलब्ध करा दिया है... रोटी... कपड़ा... मकान... मनोरंजन। बाजार ने हमें स्व-केंद्रित कर दिया है या हम खुद होना चाहते थे? यह बात समझ में नहीं आती। हमने भरसक इसको पांव पसारने में सहयोग ही किया है। उदारीकरण के बाद शहरों के भीतर शहर बसने लगे थे... आधुनिक सुविधाओं से युक्त बहुमंजिला इमारतें, हाई टेक बाजार...और भी बहुत कुछ। कहने का मतलब जमीनों के दाम बेहिसाब महंगे हुए। रहन-सहन के तरीके तेजी से बदले। अब हर कोई व्यवसायी था। सबने कई मकान-प्लाट इसलिए खरीदे ताकि भविष्य में उनसे मुनाफा कमाया जा सके। पहले अपनी निजी संपतियां इस सोच की बलि चढ़ीं फिर सार्वजनिक जगहें... हाट, खेल-मैदान, चारागाह, रंगशालाएं, होटल, पार्क, सिंगल स्क्रीन थियेटर और भी बहुत कुछ। धीरे-धीरे सब कुछ जैसे विलुप्त हो रहा है... कस्बों, शहरों और नगरों से। इस बात को लेकर हम भी अभ्यस्त होते जा रहे हैं। अब कुछ भी बचाने या फिर नई पीढ़ी को

हस्तांतरित करने की कोई भावना नहीं। सब कुछ रेडीमेड व्यवस्था पर जैसे आश्रित होता जा रहा है। सामूहिकता जैसे शब्द कोष का एक विस्मृत शब्द बनकर रह गया है। उसी खोते हुए को बचा लेने की कहानी कहता है ''नाचघर''।

'वक्त के बीतने के साथ उसका खारापन कम होता रहता है। बेहद संघर्षों में निकला वक्त भी गुजरकर नरम पड़ जाता है। और जब हम उसे याद करते हैं तो उसमें थोड़ी-बहुत मिठास आ ही जाती है। अगर यह बात बीत चुके सुदूर के वक्त की हो तब तो संघर्ष यादों में पड़े-पड़े मिठा ही जाते हैं।'

- सुशील शुक्ल (संपादक-चकमक, प्लूटो)

वर्तमान में लिखे जा रहे बाल साहित्य में गुजरे वक्त की मीठी यादें ही तो संजोयी गई हैं। बचपन के संघर्षों, भय, चिंताओं, अनुत्तरित सवालों और चुनौतियों की जगह सीमित है। जबकि वास्तव में यही हमारी और आने वाली पीढ़ी के लिए थाती हैं। 'प्रियम्वद का नाचघर' मीठी यादों को संजोने के साथ-साथ टीस की भी कहानी कहता है।

कानपुर शहर के पृष्ठभूमि में 'नाचघर' कहानी है दो किशोरों की - मोहसिन और दूर्वा - जो अपने परिवेश से बाहर कुछ तलाश रहे होते हैं। नाचघर उनका ठिकाना बनता है जहां वे बाहर की दुनिया से संपृक्त हो अपने ख्यालों के पंख लगाकर उड़ने की कोशिश करते हैं। दोनों का किशोरवय निश्छल प्रेम है। उससे उपजा विस्मय और रोमांच भी जो कहानी के साथ विविधरंगी होता जाता है। सधी-सरल भाषा में छोटे-छोटे वाक्य बतियाते से लगते हैं। मानो कोई सामने बैठा नाचघर की आंखों देखी कहानी सुना रहा हो। पात्र आपस में संवाद करते-करते सहसा पाठक से भी बातें करने लगते हैं। बातें भी वैसी कि बहुत सी व्यवहारिक-मानसिक-सामाजिक गिरहें खुल जाएं। मसलन

अंधेरा अब बढ़ गया था। रोशनदान से अजान की आवाज फड़फड़ाती हुई अन्दर आई। मोहसिन उदास हो गया। उसकी अम्मी उसे जरूर ढूंढ़ रही होंगी। लड़की ने मोहसिन की उदासी देखी।

'एक काम करते हैं। तुम मुसलमान हो यह नाम से ही पता चलेगा। कोई मेरे घर से पूछे तो दूसरा नाम बता देना।'

'क्या?' 'मोहन।'

'ऐसे नहीं... तुम भी अपना नाम बदलो- तब।'

'मैं क्यों?'

'कल तुम मेरे घर चलना. वहाँ भी सब काफिरों से मिलने से मना करते हैं।'

'ठीक है...' लड़की हंसी। 'क्या नाम रखोगे?'

मोहसिन ने लड़की को देखा। वह बहुत पास थी। मोहसिन ने नीला आकाश, चिमनियों के इर्द-गिर्द लाल बादलों के गुच्छे, शहतूत, दमपुख्त की केसर, आरती की लौ सब को एक साथ देखा।

'हुस्ना।' वहा हंसा।

अन्य प्रमुख पात्रों में एक तरफ सगीर और उसकी लिल्ली घोड़ी हैं। सगीर एक तरफ वैद्यजी की रामलीला में सीता की सहेली बनता है तो दूसरी ओर बारात में लिल्ली घोड़ी के साथ नाचते हुए 'तू प्रेम नगर का राजा... जैसे गीत गाता है। वह वर्तमान में नाच के अप्रासंगिक होते जाने को लेकर मायूस है। एक कलाकार जो डूबती हसरतों के साथ दरगाह के समीप की दुकान पर चादर बेचता है।

दूसरी ओर पादरी हेबर, मेडलीन की वसीयत और शहर का बड़ा बिल्डर काला बच्चा हैं। जिनके हाथों में नाचघर के भविष्य का फैसला था। यानि शहर की सांस्कृतिक विरासत के बिकने के पीछे जिम्मेदार लोग। इसके साथ-साथ अन्य छोटे-छोटे लेकिन महत्वपूर्ण पात्र इस उपन्यास में रोचकता के साथ बुने गए हैं जो पाठकों को कहानी की लय में शामिल कर लेते हैं। इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है - ''नाचघर''।

''दो सौ साल से ज्यादा पुरानी इमारत पर अब सब ओर से ताले लगे थे। इसके मालिक कहीं इंग्लैण्ड में रहते थे। तब यह शहर की सबसे खूबसूरत इमारत थी। शाम को जब इसकी रोशनियां जलतीं, सड़कों पर इत्रवाला पानी छिड़का

पुस्तक : नाचघर; **लेखक** : प्रियम्वद
मूल्य : 225 रुपये (पेपर बैक)
पृष्ठ संख्या : 114 (कवर सहित)
प्रकाशक : जुगनू प्रकाशन,
भोपाल, मध्य प्रदेश

जाता, बग्घी, पालकियों पर अंग्रेज औरतें आदमी आते, अंदर की बाजों की धुन पर थिरकते जोड़ों की आवाजें बाहर आतीं, तब लोग दूर झुण्ड बनाकर इसे देखा करते। यहां हमेशा तरह-तरह का नाच होता। इतना ज्यादा 'नाच' होता था कि लोगों ने इसका नाम नाचघर रख दिया था।'' (''नाचघर'' का अंश)

उपन्यास में लिल्ली घोड़ी की उदासी, पियानो और बालों की लट, एक रुकी हुई सुबह, द लास्ट ग्लिम्पस, सोन ख्वाब, केशों में केसर वन आदि जैसे अलग-अलग उप-शीर्षक हैं। इन्हीं शीर्षकों के साथ यह उपन्यास चकमक पत्रिका में धारावाहिक के रूप में छपा भी था।

इस उपन्यास में कई रेखाचित्र लेखक ने खींचे हैं। इन रेखाचित्रों से उपन्यास में सामान्य से सामान्य पात्र भी उभर आता है जो या तो घटना विशेष को मुकम्मल करता है या फिर उनको विस्तार दे देता है। जैसे 'लिल्ली घोड़ी की उदासी' का सगीर, 'कंफेशन बॉक्स' में लड़की मेडलिन, 'एक रुकी हुई सुबह' में पचसुतिया पेड़ के नीचे बैठा हुआ आदमी, 'लालमिर्च' का काला बच्चा और नुजुमी आदि। यहां नुजुमी के बारे में उद्धृत एक अंश देखते हैं;

''सीढ़ियां चढ़कर काला बच्चा ने कोठरी के पुराने दरवाजे पर दस्तक दी। यह अलग तरह की दस्तक थी। उसे यह नुजुमी ने सिखाई थी। यह पूरे चांद की रात में रोते हुए भेड़िए की आवाज जैसी थी। नुजूमी इससे पहचान जाता था कि कौन मिलने आया है। उसने हर मिलने वाले को अलग तरह से दस्तक देना सिखाया था। कोई कुएं में बाल्टी डालने जैसी आवाज में थे, तो कोई खतरा देख कर चिल्लाने वाली गिलहरी की तरह थी। जेबरे की धारियों की तरह उसने दस्तक की भी एक भाषा तैयार कर ली थी। दस्तक से नुजुमी पहचान गया कि काला बच्चा है।''

('लालमिर्च' का अंश)

नुजुमी के व्यक्तित्व की विशेषताओं को बड़ी साफगोई लेखक बयां करता है। पाठक उपन्यास खत्म होने के बावजूद भी इन छोटे-छोटे पात्रों को भूल नहीं पाता। इस तरह के कई पात्र हैं जिनका बेहद बारीकी से प्रभावशाली चित्रण करने में लेखक सफल रहे हैं जिनको लेकर बच्चों-किशोरों में कुतुहल बनी रहेगी।

लेखक ने उपन्यास में बच्चों की छोटी-छोटी बातों को लेकर अवलोकन, ख्यालों के ताने-बाने को बखूबी दो निबंधों के माध्यम से व्यक्त किया है। घोड़े और सुबह शीर्षक से ये निबंध मोहसिन और दूर्वा के द्वारा एक प्रतियोगिता में लिखे गए हैं।

''घोड़े मनुष्य के सबसे पुराने दोस्त हैं। इंसानों ने जबसे धरती को जीतना शुरू किया है तब से घोड़े भी उनका साथ दे रहे हैं। ये घोड़े इंसानों को अपनी पीठ पर बैठाकर आल्प्स से गंगा और वोल्गा से अरब के रेगिस्तान के पार दौड़ते थे....'' इसे मोहसिन ने लिखा था।

जबकि दूर्वा सुबह के बारे में लिखती है कि- ''सुबह दो होती हैं। एक वह जिसमें रौशनी होती है। सूरज, चिड़िया, आसमान के रंग, स्कूल जाने वाले बच्चे, सड़क पर झाड़ू लगाने वाले, मंदिरों की पूजा, नल का पानी होता है। इस सुबह के बारे में हम सभी जानते हैं। पर इस सुबह से पहले भी एक सुबह होती है। यह बहुत थोड़ी देर के लिए होती है। इसमें रौशनी नहीं होती। यह अंधेरा खत्म होने और रौशनी शुरू होने से पहले वाले बीच के समय में होती है। या उषा या नसीम से थोड़ा पहले का समय होता है। असली सुबह यही है....''

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 (NCF 2005) इतिहास शिक्षण के बारे में यह कहता है - ''इतिहास को इस तरह से पढ़ाया जाना चाहिए कि उसके माध्यम से विद्यार्थियों में अपने विश्व की बेहतर समझ विकसित हो और वे अपनी उस पहचान को भी समझ सकें जो समृद्ध तथा विविध अतीत का हिस्सा रही है। ऐसे प्रयास होने चाहिए कि इतिहास के विद्यार्थियों को विश्व में हो रहे बदलाओं व निरंतरता की प्रक्रियाओं की खोज में सक्षम बना पाए और वे यह तुलना भी कर सकें कि सत्ता और नियंत्रण के तरीके क्या थे और आज क्या है?''

नाचघर में जीवंत शहर है, लोग हैं, उनके जीवन-यापन हैं। शहर का वर्तमान और इतिहास भी है। अक्सर राजकीय विद्यालयों में इतिहास के शिक्षकों से पठन-पाठन पर बात करने का मौका मिलता है। एक सवाल बार-बार दुहराता हूं- कक्षा में इतिहास का शिक्षण कैसे हो? हर बार जवाब जरूर आता है- ''कहानी के रूप में''। लेकिन ऐतिहासिक संदर्भों को कहानी बनते और उसे सुनाते कम ही देखने-सुनने का मौका मिलता है। लेखक इतिहास के अध्येता रहे हैं। 'भारत विभाजन की अन्तः कथा' इनकी प्रसिद्ध किताबों में से है। इस उपन्यास में ऐतिहासिक संदर्भ कहानी के साथ इस तरह आते हैं कि इतिहास बोध का कोई अतिरिक्त आग्रह पाठक को नहीं लगता। एक बानगी देखते हैं-

''सन 1600 की आखिरी रात के कुछ आखिरी घंटे बचे थे। उसी समय, जब नया साल धरती पर उतरने के लिए सज-संवर रहा था और शेक्सपियर 'हैमलेट' लिख रहा था और आगरा के लाल किले में अकबर गहरी नींद में सो रहा था, रानी एलिजाबेथ ने सामने रखे कागज पर एक शाही मुहर मार दी थी। इसी के साथ इस मुल्क की किस्मत बदलने वाली 'ईस्ट इंडिया' कंपनी का जन्म हो गया। लंदन के कुछ छोटे-मोटे व्यापारियों वाली इस कंपनी ने, सिर्फ दो सौ सालों के अन्दर हिंदुस्तान ही नहीं, दुनिया के आबादी के पांचवे हिस्से को अपने अधीन कर लिया।''

(कन्फेशन बॉक्स का अंश)

''14, 15 अगस्त 1947 की रात को जुड़वां बच्चों की तरह, दुनिया के नक्शे पर दो नए देशों ने जन्म लिया। इनके नाम भारत और पाकिस्तान थे। दुनिया के देशों में बंटवारे होते रहे हैं, पर यह सबसे बड़ा और बुरा बंटवारा था। लाखों की मौत हुई और लाखों लोग बेघर हुए। हजारों अपने परिवारों से बिछड़ गए।''

('लालमिर्च' का अंश)

इसी तरह पार्क का कुआं जिसमें 1857 के गदर दौरान दो सौ बीस अंग्रेज औरतों, बच्चों को मार करके उनकी लाशें फेंक दी गई थीं। जिस पर बनी हुई परी की आंखों से रात में दो सौ बीस आंसू निकलते थे। या फिर कानपुर में जूते बनाने के कारखाने की कहानी जो 20 अक्टूबर 1962 के चीन हमले से जुड़ती है।

इतिहास के संदर्भों का लेखक ने बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है। जिससे बाल पाठकों की रूचि इस उपन्यास के कथानक में बढ़ जाएगी।

उपन्यास बहुत ही रोचक तरीके से लिखा गया है। इसमें पठनीयता भी बहुत है। इसमें नाचघर एक सपने की तरह आया है, जिसे प्रियम्वद नयी पीढ़ी की आंखों में भरना चाहते हैं- वर्तमान निर्मम समय में लुप्त होती, नष्ट की जा रही, शिथिल पड़ती विरासतों, संस्कृतियों और कलाओं को बचा लेना। जैसे मोहसीन और दूर्वा ने नाचघर को बचा लिया और उसकी विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं।

अंत में दो तीन बातें जो अगर इस उपन्यास में दुरुस्त कर ली गई होती तो शायद यह उपन्यास और भी प्रभावी हो जाता। मसलन रानी एलिजाबेथ का एक ही संदर्भ दो बार हू-ब-हू प्रयुक्त हुआ है। जिसको पढ़ते हुए पाठक एक दुहराव महसूस करता है। सगीर और उसकी लिल्ली घोड़ी उपन्यास के शुरू में महत्वपूर्ण पात्र के रूप में उभरते हैं। उपन्यास पढ़ते हुए लगता है कि इन चरित्रों का विस्तार जरूरी था। साथ ही 'हम होंगे कामयाब' और 'ऊपर चले रेल का पहिया, नीचे बहती गंगा मैया' को पढ़ते हुए कहानी ठहर सी गई लगती है।

हाल-फिलहाल ऐसे बाल उपन्यास हिंदी में नहीं आए हैं। प्रियम्वद का ''नाचघर'' बाल साहित्य में उनके एक योगदान के रूप में याद किया जाएगा। इसके लिए लेखक और उनके प्रकाशक 'इकतारा, भोपाल' का साधुवाद। ◆

लेखक परिचय : पिछले एक दशक से शिक्षा और ग्रामीण विकास के लिए विभिन्न संस्थाओं के साथ काम किया। देश की प्रमुख साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में एक दर्जन कहानियां प्रकाशित। वर्तमान में टाटा ट्रस्ट्स के पराग कार्यक्रम में लाइब्रेरी प्रबंधक के रूप में कार्यरत हैं।

संपर्क : 9116001168; nnirav@tatatrusts.org